Chapter-4

चतुर्थ अध्याय

''विवेच्यकाल के उपन्यासों में समाज, धर्म, राजनीति एवं व्यवस्था के प्रति विद्रोह तथा आक्रोश की मनः स्थितियाँ''

बीसवीं सदी के पश्चात् हिन्दी उपन्यास धीरे-धीरे विकसित स्थिति में पहुँचने लगा था। प्रेमचन्द युग में ही विवेच्यकाल भी अपने पाँव पसार रहा था। हिन्दी उपन्यासों में विवेच्यकाल लगभग १९१८ ई. से १९५० ई. के मध्य का समय है। यही काल प्रेमचन्द युग का अन्तिम काल माना जाता है। इस समय के उपन्यासकारों में 'जगदीश झा विमल', 'जी.पी.श्रीवास्तव', 'चंडी प्रसाद उग्र', 'गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश', 'देवनारायण द्विवेदी', 'प्रफुल्लचन्द औझा', 'शिवपूजन सहाय', 'जयशंकर प्रसाद', 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला', 'विश्वनाथ सिंह शर्मा', 'परिपूर्णानन्द वर्मा', 'ऋषभचरण जैन', ' विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक', 'मदारी लाल गुप्त' आदि प्रमुख है।

विवेच्यकाल के उपन्यासों को प्रमुख रूप से समृद्ध करने वाले उपन्यासकारों में 'जयशंकर प्रसाद' और 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' ही माने जाते हैं। विवेच्यकाल के उपन्यासों में समाज, धर्म, राजनीति एवं व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह की भावना स्पष्ट तौर पर देखी जा सकती हैं। इस अध्याय में हम इसका अध्ययन निम्नलिखित चार भागों में करेंगे–

४.१ विवेच्यकाल में सामाजिक आक्रोश एवं विद्रोह

४.२ विवेच्यकाल में धार्मिक आक्रोश एवं विद्रोह

४.३ विवेच्यकाल में राजनीतिक आक्रोश एवं विद्रोह

४.४ विवेच्यकाल में व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह

४.१ विवेच्यकाल में सामाजिक आक्रोश एवं विद्रोह

'जगदीश झा विमल' ने अपने उपन्यासों में समाज के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश की भावना उजागर की है। उनके उपन्यास *'निर्धन'* (१९२०) में आर्थिक दृष्टि से समान नहीं दिखने वाले परिवारों के बीच शादी-ब्याह जैसे वैवाहिक सम्बन्धों का अंकन किया है। इसमें दो परिवार, जिसमें एक परिवार तो धन्य-धान्य से पूर्ण है तथा दूसरा परिवार आर्थिक दृष्टि से अत्यन्त कमजोर है। ऐसे दोनों परिवारों के मध्य जब शादी हो जाती है, तो बाद में उसके विनाशकारी परिणाम सामने आते हैं। जमींदार की पुत्री से अलग एक गरीब परिवार की सुशिक्षित तथा सुशील कन्या को उपन्यासकार ने उत्तम बताया है तथा साथ ही साथ इस उपन्यास के माध्यम से तिलक-दहेज, शादी के समय किए जाने वाली फिजूलखर्ची की भी आलोचना की है। सामाजिक, आर्थिक और मानवीय समस्याओं के प्रति 'विमल जी' की जागरूकता का परिचय उनके उपन्यासों में मिलता है। सन् १९२१ ई. में उनका दूसरा उपन्यास *'खरा सोना'* का अंकन हुआ। *'खरा सोना'* उपन्यास में किसानों पर ऊँचें ओहदे वाले जमींदारों के अत्याचार, मिल-कारखानों के मालिक तथा मजदूरों के बीच संघर्ष, मजदूरों की हडताल तथा अंग्रेजों के विरूद्ध जनता के असंतोष का चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने राष्ट्रीय भावनाओं और विचारों का अंकन किया है तथा जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण और मजदूरों की हडताल, मजदूरों के विरोध का बडा ही अच्छा चित्रण किया है। मजदूरों और मिल-कारखानों के मालिकों में राजीनामा करवा कर 'विमल जी' ने विद्रोह के प्रति जागरूकता का उदाहरण दिया है।

विवेच्यकाल में 'जी पी श्रीवास्तव' विशेष रूप से अपने हास्य रस के उपन्यासों के लिए जाने जाते हैं। 'श्रीवास्तव जी' के उपन्यासों में *'प्राणनाथ'* (१९२५), *'गंगाजमुनी'* (१९२९), *'दिल की आग उर्फ दिलजले की आह'* (१९३२) प्रमुख है। इनमें 'श्रीवास्तव जी' ने निस्वार्थ प्रेम, दहेज प्रथा, विवाह तथा श्राद्ध आदि में होने वाली फिजूलखर्ची का वर्णन किया है। समाज की उस व्यवस्था के प्रति आक्रोश दिखाया है, जिसकी मान्यताओं के लिए अपव्यय होता हैं। ढोंगी, साधु-सन्तों के पाखण्ड का भी चित्रण इनके उपन्यासों में सटीक रूप से किया गया है।

इसी युग के शुरूआती दौर में 'मदारीलाल गुप्त' ने *'गौरी शंकर'* (१९२३), *'सखाराम'* (१९२४), *'मानिक मन्दिर'* (१९२०) आदि उपन्यासों की रचना की। इन सभी उपन्यासों में सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह दिखलाया है। इन उपन्यासों में स्त्रियों के पतिव्रत, सत्चरित्र,

वृद्ध विवाह से उत्पन्न दुष्परिणाम, निर्धन परिवार की बेटियों के दुर्भाग्य, बाल विवाह जैसी कुरीतियों का अंकन किया गया है। उपन्यासकार ने स्त्रियों के लिए स्वावलम्बी शिक्षा, चारित्रिक–दृढता आदि की आवश्यकता बतलायी गयी है, जो उसकी सामाजिक जागरूकता का परिचायक है।

'चंडी प्रसाद उग्र' विवेच्यकाल के ऐसे विशिष्ट उपन्यासकार हैं, जिन्होंने तात्कालीन समाज की कुरीतियों का साहसपूर्ण चित्रण किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में शराब पीने वाले शराबियों, वेश्याओं, दलितों आदि से जुडी यर्थाथता को प्रस्तुत किया है। उनका प्रमुख उपन्यास *'कलकत्ता रहस्य'* में उन्होंने कलकत्ता में होने वाली एक से बढकर एक आश्चर्यपूर्ण रोमांचकारी करूण और वीर रसों से पूर्ण सच्ची घटनाओं का बडा ही सुन्दर अंकन किया है। कलकत्ता के अच्छे–बुरे, बडे और छोटे, ऊँचे और नीचे, अमीर और गरीब सभी प्रकार के चरित्रों का चित्रण चित्रित किया है। साथ ही इस सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह को भी दर्शाया है।

१९३३ ई. में 'सियारामशरण गुप्त' कृत *'गोद'* और १९३५ ई. में *'अन्तिम आकांक्षा'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुए। *'गोद'* उपन्यास में ग्रामीण जीवन की पृष्ठभूमि पर संयुक्त परिवार के घनिष्ठ आत्मीय सम्बंधों तथा सन्देह व अविश्वास के कारण स्त्री पर समाज द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का चित्रण किया गया है। यह गाँव में रहने वाले एक संयुक्त परिवार की कहानी है, जिसमें परस्पर आत्मीय सम्बन्ध होते हैं, वहाँ अगर उस परिवार की कोई भी स्त्री पर सन्देह हो जाये तो उस पर बाहरी समाज द्वारा जो पीडा पहुँचायी जाती है, उसी का वर्णन इस उपन्यास में हुआ है।इस उपन्यास में दर्शाया गया है, कि किस तरह पात्रों का हृदय परिवर्तन बडी ही आसानी के साथ हो जाता है। *'अन्तिम आकांक्षा'* उपन्यास में एक निम्न वर्ग के पात्र रामलाल का आदर्श चरित्र उसके मालिक के नजरिए से दिखाया गया है। उपन्यासकार की समाज के प्रति चेतना अत्यन्त गहरी है। रामलाल के चरित्र के माध्यम से 'गुप्त जी' ने सामाजिक विषमता तथा समाज में फैले भ्रष्टाचार का धारदार चित्रण किया है। गरीब व निर्धन पात्रों के प्रति अभिजात वर्ग की मानवीय सहानुभूति उपन्यास में निहित है। यह दृष्टि उपन्यासकार के गाँधीवादी दृष्टिकोण को संकेतित करती है। 'गुप्त जी' का १९३७ ई. में तीसरा उपन्यास *'नारी'* प्रकाशित हुआ। *'नारी'* गुप्त जी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना गया है। इस उपन्यास में समकालीन भारतीय स्त्री की असहाय और विवशता का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र जमुना है, जो अपने पति द्वारा छोड दी गई है। जमुना परित्यकता होते हुए भी अकेले विपरीत

परिस्थितियों से संघर्ष करती है। अकेले ही समाज द्वारा उत्पन्न की हुई कठिनाईयों को सहती और उनसे जूझती है, पर समझौता नहीं करती है। उसी का प्रमाण है, कि इस उपन्यास में जमुना का चरित्र आदर्श भारतीय नारी के रूप में चित्रित किया गया है।

'गोविन्द वल्लभ पन्त' का पहला उपन्यास *'सचरित'* सन् १९२२ ई. में प्रकाशित हुआ। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। जिसमें महाराणा प्रताप की कथा को सामान्य ढंग से प्रस्तुत किया है। *'प्रतिमा'* और *'मदारी'* उपन्यास भी इस युग में प्रकाशित 'गोविन्द वल्लभ पन्त' के अन्य उपन्यास है। *'मदारी'* उपन्यास में पहाडों और विशेष कर मदारियों के जीवन का अंकन किया गया है, कि वे किस तरह अपने बन्दरों को लेकर पहाडों जैसे उबड-खाबड रास्तों पर अपने जीवन-यापन हेतु चलते रहते हैं।

१९२८ ई. में एक और उपन्यासकार 'प्रताप नारायण श्रीवास्तव' का *'विदा'* नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास का कथानक नयापन लिए हुए है। इसका नयापन यह है, कि इसमें पाश्चात्य सभ्यता में रंगी तात्कालीन सिविल लाईन्स कर्मचारी और नागरिक समाज की जिन्दगी का यथार्थ चित्रण किया गया है। लेखक का प्रमुख उद्देश्य पाश्चात्य जीवन-मूल्यों, रहन-सहन, शिक्षा पद्धति की आलोचना करना है। उपन्यासकार ने पाश्चात्य सभ्यता की गतिविधियों पर आक्रोश व्यक्त किया है। तलाक और दूसरा विवाह का विरोध करते हुए उपन्यासकार ने स्त्रियों के लिए सेवा और प्रेम भाव की महत्ता को प्रतिपादित किया है। उपन्यासकार के अनुसार विवाह होने पर तलाक लेना उचित नहीं है और तलाक के पश्चात् जो दूसरा विवाह कर लेते हैं, वो नहीं करना चाहिए। इसके बजाए स्त्रियों को प्रेम व सेवा भाव से जीवन-यापन करना चाहिए ।

अतः अन्त में हम यह कह सकते हैं कि 'जगदीश झा विमल', 'जी पी श्रीवास्तव', 'मदारीलाल गुप्त', 'चंडी प्रसाद उग्र', 'सियारामशरंण गुप्त', 'गोविन्द वल्लभ पन्त', 'प्रताप नारायण श्रीवास्तव' आदि उपन्यासकारों ने विवेच्यकाल में सामाजिक आक्रोश का अंकन अपने उपन्यासों में किया है।

४.२ विवेच्यकाल में धार्मिक आक्रोश एवं विद्रोह

विवेच्य काल में विद्रोह के रूप में धार्मिक विद्रोह का भी अंकन उपन्यासकारों द्वारा किया गया है। सम्प्रदाय को लेकर तो आक्रोश स्वतन्त्रता प्राप्ति के काफी पहले से ही शुरू हो गए थे, जिनका अध्ययम हम इस भाग में कर रहे हैं। 'बेचन शर्मा उग्र' पूर्ण रूप से विवेच्य काल के उपन्यासकारों में ही आते हैं। विवेच्यकाल में 'उग्र जी' के प्रमुख उपन्यासों में *'चन्द हसीनों के खतूत'* (१९२७), *'दिल्ली का दलाल'* (१९२७), *'बुधुआ की बेटी'* (१९२८), *'शराबी'* (१९३०) आदि हैं। 'बेचन शर्मा उग्र' के उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता यह है, कि वे घिसे-पिटे पक्षों को लेकर उपन्यास का सृजन नहीं करते, बल्कि समकालीन यथार्थ के अनछुए नग्न पक्षों का चित्रण करते हैं। *'चन्द हसीनों के खतूत'* उपन्यास में अलग धर्म के हिन्दू और मुस्लिम युवक और युवती के प्रेम करने और फिर शादी करने तथा साम्प्रदायिकता सद्भाव का चित्रण किया है, जो उस समय के लिए एक साहसिक प्रयास था। इसमें 'उग्र जी' ने नर्गिस और मुरारी की प्रेमकथा के माध्यम से इस विचार का प्रतिपादन किया है, कि मनुष्य पहले मनुष्य है, इसके पश्चात् वह भले ही किसी भी धर्म हिन्दू या मुसलमान सम्प्रदाय का सदस्य हो। इस उपन्यास में धार्मिक विद्रोह व आक्रोश दिखाई पडता है।

'बुधुआ की बेटी' उपन्यास में 'उग्र जी' ने समाज में तीव्र गति से फैल रहे अछूतोद्धार की समस्या का अंकन किया है। इसमें छोटी जाति को नीच जाति कहलाने वाले हरिजनों के नारकीय जीवन का ऐसा अच्छा चित्रण पहले किसी उपन्यास में हमें देखने को नहीं मिलता है। हरिजन समाज अपने इस नारकीय जीवन से तंग आकर हडताल करने का निर्णय लेते हैं। हरिजनों की हडताल का चित्रण करके उपन्यासकार ने दलितों में पैदा हो रही विद्रोह एवं आक्रोश की भावना का वर्णन किया है। 'उग्र जी' वैचारिक दृष्टि से हरिजनों को इन स्थितियों में लाने वाले उच्चवर्गीय हिन्दू समाज के विरोधी है। यहाँ भी धार्मिक विद्रोह परिलक्षित हुआ है। लेखक की सहानुभूति उच्च वर्ग की बजाय दलित समाज के प्रति अधिक है। उपन्यास के अन्त में हरिजनों की हडताल सफल हो जाती है और उन्हें वे अधिकार मिल जाते हैं, जिनके वे हकदार हैं। अब दलित समाज के युवक-युवती तथा बच्चे भी मन्दिरों में प्रवेश कर सकते हैं। उपन्यासकार ने मुख्य विषय के साथ कुछ गौण विषय भी जोड दिए हैं। जो हिन्दू समाज की कुरीतियों से सम्बंध रखते हैं। इसमें मुसलमानों के एक गिरोह द्वारा पुत्र की कामना रखने वाली

हिन्दू धर्म की स्त्रियों को धोखा देकर गलत काम करवाने का वर्णन भी मिलता है, जो सम्प्रदायिक भेदभाव का परिचायक है।

'शराबी' उपन्यास में 'उग्र जी' ने एक नये विषय को उपन्यास का केन्द्र बिन्दू बनाया है। इसमें शराबघरों का नग्न तथा यथार्थ वर्णन किया गया है। परतन्त्र भारत के जागरूक नागरिकों तथा समाज सुधारकों की चिन्ता का प्रमुख मुद्दा शराब को देश से निकाल फैंकने का था। शराब सुधार का यह सवाल देश की आजादी के सवाल से जुडा हुआ था। मदिरा के कारण इस उपन्यास के दो परिवार विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। एक शराबी पिता की लडकी वेश्या बनने को मजबूर हो जाती है। दूसरा शराबी का बेटा पिता के प्यार और सही मार्गदर्शन के अभाव में शराबी और गैर जिम्मेदार हो जाता है। दहेज प्रथा के चलते आर्थिक दृष्टि से असमान विवाह और समाज द्वारा युवक-युवतियों के प्रेम का विरोध भी उपन्यास का विषय है। उपन्यास में पत्नियों के प्रति पतियों के सामन्ती दृष्टिकोण की, उन्हें मनुष्य न समझकर भोग की वस्तु समझने की दृष्टि की 'उग्र जी' ने आलोचना की है। पिता के प्रति पुत्र का विद्रोह भी उपन्यास में अंकित है।

विवेच्यकाल के एक अन्य उपन्यासकार 'गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश' है, जिनके उपन्यासों में हमें समाज, धर्म व व्यवस्था के प्रति विद्रोह और आक्रोश दिखाई पडता है। 'गिरीश जी' के उपन्यासों में भी समसामयिकी जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। उस काल में जमींदारों और सेठों में सरकार से राजा, रायसाहब आदि उपाधियों को पाने की लालसा अपनी चरम सीमा पर थी। इन पदों को पाने के लिए वे चापलूसी, चालाकी तथा अन्य निन्दनीय काम का सहारा लेते थे। इसी वास्तविकता का चित्रण 'गिरीश जी' के *'सन्देह'* नामक उपन्यास में किया है।

गिरीश जी के दूसरे उपन्यास *'प्रेम की पीडा'* उपन्यास में एक गरीब व नाजुक छात्र की कहानी कहीं गयी है। वह निर्धन छात्र एक लडकी से प्रेम कर बैठता है, किन्तु उसके प्रेम को सभी समाज वाले नकार देते हैं। अत: इस उपन्यास में उस निर्धन छात्र की असफल प्रेम कहानी का चित्रण किया गया है, जो उस काल की ही नहीं, आज की भी कठोर और दर्दनाक सच्चाई है। एक अन्य उपन्यास *'बालू साहब'* (१९३२) उपन्यास का केन्द्रीय विषय देश की सेवा और अपने परिवार के प्रति कर्तव्यों का पालन करने के मध्य की स्थिति का वर्णन किया गया है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय देश की सेवा करने वाले सेवकों के जीवन में इस प्रकार की स्थिति

अक्सर पैदा हो जाती थी। इसे अपने उपन्यासों का विषय बनाकर 'गिरीश जी' ने अपनी लेखकीय जागरूकता का परिचय दिया है। देश के सेवक अगर देश को आजाद कराने में लीन हो जाते थे, तो उनके पारिवारिक कर्त्तव्यों का निर्वाह नहीं होता था और अगर वे परिवार के प्रति कर्त्तव्य निभाने लगे, तो देश सेवा का कर्त्तव्य अधूरा रह जाता था। बस इसी बीच की स्थिति का वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। इसके साथ ही पारस्परिक अर्थात् आपस में प्रेम के आधार पर अपनी जाति के अन्दर विवाह करने का समर्थन भी 'गिरीश जी' ने किया है। किसी भी लडकी की इच्छा के बिना उसकी किसी अयोग्य व्यक्ति से विवाह करने का भी विरोध इस उपन्यास के माध्यम से बताया है। इन सबसे यह पता चलता है ,कि उपन्यासकार का दृष्टिकोण सुधारवादी है।

'प्रफुल्लचन्द्र ओझा मुक्त' भी विवेच्य काल के ही उपन्यासकार है। 'मुक्त जी' के उपन्यासों में *'संन्यासिनी'*(१९२६), *'पतझड'*(१९३०), *'पाप और पुण्य'*(१९३०), *'जेल-यात्रा'*(१९३१), आदि प्रमुख है। इस सभी उपन्यासों में पति-पत्नी के बनते बिगडते रिश्तों के बारे में वर्णन किया गया है, साथ ही प्रेम के लोकोत्तर स्वरूप, भाव के स्तर पर प्रेम की स्थापना, देश प्रेम और व्यक्तिगत प्रेम के बीच उत्पन्न संघर्ष, एक स्त्री के प्रेम और उसकी अनकही पीडा आदि का वर्णन किया गया है। 'मुक्त जी' के उपन्यासों में प्रेम की भावुकता से भरा रूप ही सामने आता है। उनके उपन्यास *'जेलयात्रा'* में उन्होंने स्वन्तत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि का अंकन किया है। इसमें भी देश के प्रति प्रेम का अंकन बखूबी किया गया है। देश के लिए मर-मिटने वाले नवयुवकों की कहानी को इस उपन्यास में प्रमुखता दी गई है।

१९२७ ई. में 'परिपूर्णानन्द वर्मा' का पहला उपन्यास *'प्रेम का मूल्य'* और १९३२ ई. में दूसरा उपन्यास *'मेरी आह'* प्रकाशित हुए। इन सभी उपन्यासों में 'परिपूर्णानन्द वर्मा' ने स्त्री-पुरूष के प्रेम पर हिन्दू समाज द्वारा लगाए गए बंधनों की आलोचना की है। 'वर्मा जी' के अनुसार स्त्री-पुरूष का प्रेम पवित्र होता है, उसे जाँति-पाँति, ऊँच-नीच रूपी बंधनों से नहीं बाँधा जाना चाहिए, बल्कि सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिए। *'मेरी आह'* उपन्यास में साम्प्रदायिक दंगो को अपना आधार बनाया है। हिन्दू और मुस्लिम दंगो को विषय बनाकर धार्मिकता के आक्रोश को दिखाया है।

'ऋषभचरण जैन' भी विवेच्यकाल के प्रमुख उपन्यासकार हैं। १९२८ ई. में उनका प्रथम उपन्यास *'पैसे का साथी'* प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् १९३६ ई. तक उनके अनेक उपन्यास *'दिल्ली का व्याभिचार', 'मास्टर साहब', 'सत्याग्रह', 'रहस्यमयी', 'दिल्ली का कलंक'* आदि प्रकाशित हुए। इनके उपन्यासों में सच्चे और स्वार्थी मित्र के बीच अन्तर, विधवा विवाह और अर्न्तजातीय विवाह, स्त्री-पुरूष के मध्य विवाहपूर्वक प्रेम, हिन्दू समाज में फैल रही कुरीतियों का वर्णन देखने को मिलता है। 'ऋषभचरण जी' ने एक सच्चे और स्वार्थ में वशीभूत मित्र के बीच का अन्तर *'पैसे का साथी'* उपन्यास में वर्णन किया है। इस उपन्यास में बताया गया है, कि किस प्रकार एक सच्चा मित्र मुसीबत के समय हमारा साथ देता है और हमारी हर तरह से मद्‌द करता है, किन्तु स्वार्थी मित्र मुसीबत के वक्त तो हमसे दूर हो जाता है और पैसा आने पर हमारा साथी बन जाता है। अतः इस अन्तर को दिखाने की कोशिश इस उपन्यास में की गयी है। *'दिल्ली का व्याभिचार'* उपन्यास के अर्न्तगत युवक-युवतियों के शादी से पूर्व के प्रेम-सम्बंधों का चित्रण किया गया है। इन प्रेम रूपी सम्बन्धों को समाज में व्याप्त कुरीतियों से लडना होता है। जिसके अर्न्तगत उन्हें अनेक दुखों और सामाजिक यातनाओं से गुजरना पडता है। पुरूष समाज की निष्ठुरता और उनके स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचार, पुरूष के प्रति स्त्री की नफरत और प्रतिशोध का भाव, भाग्य की महत्ता और प्रबलता आदि अनेक विषयों का चित्रण इनके उपन्यासों में मिलता है। सबसे अन्तिम उपन्यास *'सत्याग्रह'* में 'ऋषभचरण जैन' ने गाँधीजी के दक्षिण अफ्रीका में चलाए गए सत्याग्रह आन्दोलन का चित्रण किया है। इन सभी वर्णनों में कहीं न कहीं से विवेच्यकाल में धार्मिक विद्रोह दिखाई देता है।

४.३ विवेच्यकाल में राजनीतिक आक्रोश एवं विद्रोह

विवेच्यकाल के समय में भी राजनीति की गन्दगी कुकुरमुत्ते की तरह पनप रही थी। पूँजीपतियों की सब कुछ हडप कर जाने की नीति, चुनावी भ्रष्टाचार तथा जमीदारों की नीति के खिलाफ जनता का विद्रोह दिखाई देता है। 'विश्वनाथसिंह शर्मा जी' के अधिकांश उपन्यासों में विवेच्यकाल में उत्पन्न राजनीतिक विद्रोह की भावना दिखाई पडती है। 'शर्मा जी' के उपन्यास *'आधुनिक चक्र', 'कसौटी', 'वेदना', 'त्यागी युवक'* आदि सन् १९२८ ई. से १९३३ ई. के बीच में प्रकाशित हुए। *'कसौटी'* (१९२९) उपन्यास में 'शर्मा जी' ने राजनीति, समाज और व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना का अंकन किया है। गरीब किसानों पर जमींदारो तथा पुलिस के अत्याचारों का चित्रण *'कसौटी'* उपन्यास में किया गया है। उपन्यास में गाँव के नवयुवक वर्ग ने स्वयं मिलकर मजदूर संघ की स्थापना कर इस जमींदारी कहर व अत्याचार का विरोध किया है। उपन्यास में प्रमुखत: सामाजिक और राजनीतिक जागृति का अंकन किया गया है। उस जागृति का समाधान गाँधीवादी तरीके से दिया गया है। *'वेदना'* उपन्यास में निम्न जाति के साथ हो रहे अत्याचार को रोकने और समस्त धर्मो की एकता का अंकन है। अत: प्रमुख रूप से हम कह सकते हैं, कि अछूतोद्धार और साम्प्रदायिक एकता का राजनीतिक चित्रण इस उपन्यास में मिलता है। *'त्यागी युवक'* उपन्यास में भी एक ऐसे समाज के बारे में सोचा गया है, अर्थात एक ऐसे समाज की कल्पना की गई है, जिसमें पूर्ण साम्प्रदायिक भाईचारा व सद्भाव, लोगों में आपस में सेवाभाव और उदार दृष्टि का अंकन किया गया है।

'विश्वनाथसिंह वर्मा' के समय में ही विवेच्यकाल के एक अन्य उपन्यासकार ने उपन्यास जगत में अपने होने का अहसास जगाया, उनका नाम है 'विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक'। इनके दो उपन्यास *'माँ'* और *'भिखारिणी'* प्रकाशित हुए। कहानी की दृष्टि से देखे तो 'कौशिक जी' के दोनों उपन्यासों में थोडी नवीनता अर्थात् नयापन देखने को मिलता है। *'माँ'* उपन्यास में माँ और गोद लेने वाली माँ के प्रेम में अन्तर को दिखाने के साथ ही एक आदर्श माँ के स्वरूप को भी दर्शाया गया है। गोद लेने वाली माँ जन्म देने वाली माँ जितना प्यार बच्चे को कभी भी नहीं कर सकती है। गोद लेने वाली माँ और जन्म देने वाली माँ के अन्तर का स्पष्टीकरण इस उपन्यास में किया गया है। 'कौशिक जी' का इस काल में प्रकाशित दूसरा उपन्यास *'भिखारिणी'* का विषय प्रेम और जातिगत भावना के द्वन्द्व में प्रेम की हार का चित्रण किया गया है। दोनों ही उपन्यासों में

पात्रों के मन के भावों का, जिनमें करूणा की प्रमुखता है, का अंकन विश्वसनीय रूप से किया गया है।

विवेच्यकाल में ही 'भगवतीचरण वर्मा' ने *'चित्रलेखा'* (१९३५) और *'तीन वर्ष'* (१९३६) नामक उपन्यासों की रचना की। *'चित्रलेखा'* उपन्यास की गिनती हिन्दी के कुछ सबसे ज्यादा लोकप्रिय उपन्यासों में होती है। इस उपन्यास में पाप क्या है और उसकी सही स्थिति क्या है इसका हल निकालने की खोज में उपन्यास के श्वेतांक और विशालदेव निकलते हैं। श्वेतांक मगद के सामन्त बीजगुप्त के साथ और विशाल देव योगी कुमारगिरि के साथ रहने लगता है। बीजगुप्त स्वभाव से भोगी है और कुमारगिरि योगी है। बीजगुप्त ऐश–आराम का जीवन व्यतीत करके भी उसके साथ रहता है, जबकि कुमारगिरि इन्द्रिय और संयम की राह पर चलकर भी अन्त में निराश हो जाता है। इस परीक्षा में राजनर्तकी चित्रलेखा कसौटी बनती है। अन्त में यह हल निकलता है, कि संसार में पाप कुछ भी नहीं है वह केवल मनुष्य के देखने के नजरिए की विषमता का दूसरा नाम है।इस उपन्यास में रानीतिक रूप का सम्बंध उपन्यास के विषय बोध के साथ किया है। *'चित्रलेखा'* उपन्यास की तरह *'तीन वर्ष'* उपन्यास भी एक नैतिक समस्या जैसा विषय है, कि प्रेम करने के पश्चात् उसे विवाह जैसे रिश्ते में बाँधना आवश्यक है या फिर नहीं। उपन्यास के प्रमुख पात्र रमेश और प्रभा, एक दूसरे से प्रेम करते हैं, पर दोनों का प्रेम सम्बंधी नजरिया अलग–अलग है। रमेश विवाह को प्यार की ही परिणति मानता है, जबकि प्रभा प्रेम को भोग के पर्याय के रूप में देखती है। उपन्यास के अन्य पात्र अजीत और सरोज भी इस समस्या के पक्ष या विपक्ष में है। अन्ततः उपन्यासकार प्रेम के आत्मीक पहलू को मानने पर अधिक बल देता है। उसके अनुसार प्रेम आत्मा से ही उपजता है। आत्मा से किया हुआ प्रेम सर्वश्रेष्ठ है। 'वृन्दावनलाल वर्मा' ने भी विवेच्यकाल में ही अपने उपन्यासों की रचना की, जिसमें *'संगम'* (१९२७), *'प्रत्यागत'* (१९२७), *'लगन'* (१९२८), *'कुंडलीचक्र'* (१९३२), *'गढ कुंडार'* (१९३०) तथा *'विराटा की पद्मिनी'* (१९३०) आदि प्रमुख है। इनमें से कुछ उपन्यास तो समकालीन समस्याओं पर आधारित उपन्यास है, तो कुछ ऐतिहासिक राजनीतिक व्यवस्था की श्रेणी में आते हैं। 'वृन्दावनलाल वर्मा जी' के राजनीतिक उपन्यासों में नयापन दिखाई देता है। इनमें दोनों उपन्यास *'गढकुंडार'* और *'विराटा की पद्मिनी'* बुन्देलखण्ड के मुस्लिम शासन काल की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इन उपन्यासों में बुंदेलखण्ड का परिवेश ऐतिहासिक व राजनीतिक तौर पर साकार हो उठा। इनमें बुन्देलखण्ड के जंगलो, पहाडियों, टौरियों, भरकों, नदियों, पेड–

पौधों, फूलों, फसलों आदि का सजीव व प्रमाणिक वर्णन मिलता है। इसी प्रकार बुन्देलखण्ड के लोकगीतों, लोक कथाओं, बोली–भाषा, जीवन जीने के संस्कार, तीज–त्यौहार आदि के वर्णन से वहाँ की संस्कृति और जीवन जीने की शैली को पहचाना जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से अगर देखे, तो 'गढकूंडार' का कथ्य संसार दिल्ली के राजा सुल्तान बलवन के समय का वर्णन किया गया है। बुन्देलखण्ड के कुडांर भरतपुर, माहौनी, पलोथर, सारौल और करैरा आदि गढों से सम्बन्ध रखते हैं। *'विराटा की पद्मिनी'* का कथा संसार मुगलकालीन शासक फारूख–सियर के समय का वर्णन किया है। इसमें विराटा, दिलीपनगर, बडनगर, पालेर, रामनगर और भांडेर आदि गढों और उनके सामन्तों की कथा प्रस्तुत की गई है। इन उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता यह है, कि इनमें दिल्ली के राजाओं की ही राजनीतिक उठा–पटक का अंकन हुआ है। दिल्ली के राजाओं का प्रतिनिधित्व कालपी राज्य के सूबेदार करते हैं। इन दोनों ही उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के राजनीतिक पतन और हीन दशा के कारणों का अंकन किया गया है। इसके साथ ही इन दोनों ही उपन्यासों में बुन्देलखण्ड के शौर्य, स्वाभिमान, संस्कृति, जीवन–पद्धति और प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण भी उपन्यासकार का मुख्य लक्ष्य है। इसके अलावा उनकी जाति के नाम पर संकीर्ण विचार, सामन्तों की आपसी फूट, कबीलों को स्वयं पर घमण्ड व उनकी संकीर्ण विचारों वाली मनोवृत्ति के कारण उन पर मुस्लिम आक्रमणकारियों के आक्रमण, लूटपाट, विनाश और उनकी अधिनता स्वीकार करने की विवशता का अंकन किया गया है। *'गढकूण्डार'* उपन्यास का मुख्य कथ्य खंगारों और बुन्देलों का जातिगत संघर्ष एवं विद्रोह है। इनके अधीन आने वाले सामन्त शूद्र और मिथ्या जाति गर्व में एक–दूसरे के विनाश की कोशिश करते रहते हैं और कालपी के मुस्लिम शासक के आक्रमण और लूटपाट के शिकार होते हैं। 'विराटा की पद्मिनी' की भी यही स्थिति है। वहाँ भी छोटे–बडे गढों के सामन्त आपस में लडते रहते हैं, जिनका लाभ कालपी के मुसलमान सूबेदार को मिलता है। इनके उपन्यास में बुन्देलखण्ड के पतन के कारणों में वहाँ के राजपरिवारों में उत्तराधिकार के लिए होने वाले संघर्षो और षडयन्त्रों का भी चित्रण किया गया है।

इन उपन्यासों की रचना के समय भारत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अधीन था, अपनी पराधीनता की पीडा को उपन्यासकार ने बुन्देलखण्ड की पराधीनता के द्वारा व्यक्त किया है। बुन्देलखण्ड के शौर्य, स्वाभिमान, प्राकृतिक सौन्दर्य आदि के अंकन में उपन्यासकार ने अपने

राष्ट्रप्रेम की अभिव्यक्ति की है। राष्ट्रप्रेम के साथ–साथ राजाओं की एक–दूसरे से राजनीति को लेकर खीचतान का भी अंकन उपन्यासकार ने बखुबी किया है।

विवेच्यकाल में 'गोविन्द वल्लभ पन्त जी' ने भी कुछ राजनीतिक उपन्यासों की रचना की जिनमें *'सूर्यास्त'* सन् १९२२ ई. में प्रकाशित हुआ। अन्य प्रमुख राजनीतिक उपन्यासों में 'माता सरन मालवीया' कृत *'नरेन्द्र भूषण'* (१९२६), 'रामचन्द्र मिश्र' कृत *'प्रेम पथिक'* (१९२६), 'कृष्णानन्द गुप्त' कृत *'केन'* (१९३०), 'चतुरसेन शास्त्री' कृत *'खवास का ब्याह'* (१९३२), 'रामप्योर त्रिपाठी' कृत *'दिल्ली की शाहजादी'* (१९३३), 'ब्रजनन्दन सहाय' कृत *'विस्मृत सम्राट'* (१९३६) आदि समस्त उपन्यास राजनीतिक विद्रोह से ओतप्रोत उपन्यासों की श्रेणी में आते हैं।

'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' ने अपने उपन्यास *'अलका'* (१९३३) में राजनीतिक आक्रोश की भावना प्रस्तुत की है। भ्रष्ट राजनीति इस समय भी एक ज्वलन्त समस्या है। इस उपन्यास में अवध प्रान्त के किसानों की अभावग्रस्त, दयनीय और नाटकीय जिन्दगी का अंकन किया है। इसमें जो राजनीतिक दावपेंच के द्वारा हो रहे शोषण का भी प्रभावी अंकन किया है। इस उपन्यास का समय स्वाधीनता संग्राम का वह चरण है, जब पहले विश्वयुद्ध के पश्चात् गाँधीजी ने विदेशियों को भगाने हेतू अनेक आन्दोलन किए। गाँधीजी के साथ वकीलों और पूँजीपतियों के समाज से उभरे नेतागणों की जमात आजादी की लडाई में कूद पडी थी। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है, कि इस वर्ग ने बहुत त्याग किया और मुसीबतें भी झेली है। परन्तु किसानों–मजदूरों की दुर्भाग्यपूर्ण जिन्दगी से इनकी प्रतिबद्धता बहुत कम थी, अतः इन्हें लाभ तो मिला किन्तु बहुत कम। इनका प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजों से अपने लिए स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। भारतीय किसान और मजदूर वर्ग अभी अपनी स्वतन्त्रता की लडाई के लिए संगठित नहीं था। उपन्यास का एक पात्र उन नेताओं की भी आलोचना करता है, जो लाखों–करोडों की काली कमाई करने के पश्चात् भी कुर्सी पर बने हुए हैं। अतः सत्ता उन गलत नेताओं के हाथ में ही है। इस उपन्यास में राजनीति के प्रति विद्रोह का स्वर दिखाई देता है। इस प्रकार कांग्रेस का नेतृत्व और किसान जनता वर्ग का स्वार्थ एक–दूसरे से सभी प्रकार से अलग था, जिसें 'निराला जी' ने इस उपन्यास में बहुत अच्छी तरह स्पष्ट किया है। 'निराला जी' ने *'अलका'* उपन्यास में नेताओं कि जमींदारों के विरूद्ध किसानों की बगावत का यथार्थ चित्रण किया हैं।

राजनीतिक भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का निडरतापूर्ण चित्रण इस काल के गौण उपन्यासकारों की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि मानी जा सकती है। 'भगवत प्रसाद शुक्ल' कृत *'भारतप्रेमी'* (१९१९) उपन्यास में भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का चित्रण करने वाला प्रथम उपन्यास था। 'प्रेमचन्द' ने स्वाधीनता राजनीतिक आन्दोलन के अंकन में थोडी सावधानी का परिचय दिया है। अत: विवेच्यकाल के कई उपन्यासकार यह खतरा मोल लेने का साहस दिखाते हैं। परन्तु साहसी उपन्यासकारों मे 'भगवत प्रसाद शुक्ल' आते हैं। इन्होंने अपने उपन्यास में भारत की राजनीतिक व स्वाधीनता के सम्बन्ध में अपने विचार खुलकर व्यक्त किए हैं। 'धनीराम' कृत *'मेरा देश'* (१९३६) उपन्यास इसी समय में प्रकाशित हुआ। इसमें स्वतन्त्रता व राजनीतियों के भंडा -फोड की खुलकर अभिव्यक्ति हुई है। 'मोहिनी मोहन' कृत *'देशोद्धार'* (१९२०) 'कृष्णलाल वर्मा' कृत *'पुनरूत्थान'* (१९२१) आदि उपन्यासों में स्वतन्त्रता के समय की राजनीति के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश की भावना दिखाई देती है।

इन्हीं स्वर के साथ-साथ 'दुर्गाप्रसाद खत्रीजी' के उपन्यासों में भी राजनीतिक विद्रोही भावना परिलक्षित हुई है। इनमें औपनिवेशिक उत्पीडन और दमन से उत्तर भारत तथा समूचे एशिया की जनता के प्रति सहानुभूति तथा सम्राज्य विरोधी विद्रोही भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इनके उपन्यास *'मृत्युकिरण'* के पात्र भी जनशक्ति की अपेक्षा शास्त्रों की शक्ति पर अधिक बल देते हैं। अर्थात् लोगों की शक्ति से अधिक शास्त्रों की शक्तियाँ अधिक बलशाली एवं महत्वपूर्ण है। शस्त्रों की ताकत से ब्रिटिश राजनीति का अन्त करने की योजना इस उपन्यास के पात्र आपस में बनाते हैं। अत: स्पष्ट है, कि उस समय भारत में चल रहे सशस्त्र स्वाधीनता आन्दोलन का प्रभाव दिखाई पडता है। उस समय 'करो या मरो' का नारा अधिक प्रचलित था। युवा वर्ग ने अहिंसावादी रास्ता नहीं अपनाकर अंग्रेजी शासन की गन्दी राजनीति के खिलाफ हिंसात्मक तरीके अपनाकर अग्रेजों के खिलाफ जंग लड रहे थे। वे शस्त्रों की सहायता से अपना राष्ट्र पाना चाहते थे। इन्हीं सबका वर्णन 'खत्री जी' के उपन्यासों में हुआ है।

'राहुल सांस्कृत्यायन जी' के उपन्यास *'जीने के लिए'* सन् १९५० ई. में प्रकाशित हुआ। विवेच्यकाल के इस उपन्यास में हमें राजनीति के प्रति विद्रोह एवं आक्रोश का भाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। इस उपन्यास में गत् शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर चौथे दशक तक की भारत की राजनीतिक स्थिति का अंकन किया है। इस उपन्यास का कथ्य उपन्यासकार का स्वयं का निजी अनुभव संसार था। इसमें रौलट एक्ट, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, ब्रिटेन के सैनिक

और उसके विरूद्ध स्वाधीनता आन्दोलन के अनेक रूप शामिल थे। *'जीने के लिए'* हिन्दी साहित्य का प्रथम खुला राजनीतिक उपन्यास है, इसी दृष्टि से इसका ऐतिहासिक महत्व भी है। अच्छी शासन व्यवास्था के लिए 'राहुल जी' का एक सपना था, जिसकी सीधी अभिव्यक्ति बाईसवीं सदीं में हुई। 'राहुल जी' *'सिंह सेनापति'* उपन्यास के कथ्य में वर्तमान और आने वाले भविष्य भारत के दर्शन किए है। इस उपन्यास की कहानी में ईसा पूर्व पाँच सौ वर्ष के लगभग तथा वैशाली और तक्षशिला गणराज्यों की शासन व्यवस्था का चित्रण किया है। इसमें समाज के नेताओं का वह वर्ग है, जो जनता पर भ्रष्टाचार करके जीता है। मुखिया नेता लोग चुनावी प्रक्रिया द्वारा चुने जाते हैं। चुनावों में जनता को धन का लालच देकर सर्वप्रथम तो कुर्सी हथिया लेते हैं और बाद में दिया हुआ धन सूद सहित वापस वसूल कर लेते हैं। इसी कडवी राजनीतिक सच्चाई को इन्होंने दिखाने का प्रयत्न किया है।

अतः अन्त में हम कह सकते हैं, कि विवेच्यकाल में भी अनेक उपन्यासकारों नें राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह को दर्शाया है। पूँजीपतियों, जमींदारों व सूबेदारों के गलत मनसूबों का जनता ने कभी अकेले तो कभी मिलकर विद्रोह किया है। विवेच्यकाल के समय में पूँजीपतीयों, जमींदारों, सूबेदारों व सरकारी अमलों की ही राजनीति सत्ता में थी। ये लोग ही गरीब किसान, मजदूरों व दलित वर्ग के लोगों का शोषण करते थे। इस निम्न वर्ग की इन लोगों के प्रति विद्रोह की भावना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

४.४ विवेच्यकाल में व्यवस्था के प्रति आक्रोश एवं विद्रोह

विवेच्यकाल के अन्तर्गत हमारी सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तमाम व्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह के दर्शन होते हैं। इस समय के तीन उपन्यसकारों 'भगवती प्रसाद वाजपेयी', 'जैनेन्द्र कुमार' और 'इलाचन्द्र जोशी' इस दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय माने जाते हैं। इन्होंने हिन्दी उपन्यास को सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ व्यक्तिवादी और मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में प्रवेश कराया।

'भगवती प्रसाद वाजपेयी' के उपन्यास का रचना समय १२२६ ई. से लेकर १९७१ ई. तक फैला हुआ है। उनके उपन्यास लेखन का प्रथम दौर १९२६ ई. से १९५० ई. तक का है। १९३६ ई. तक 'वाजपेयी जी' के *'प्रेमपथ'* (१९२६), *'अनाथ पत्नी'* (१९२८), *'मुसकान'* (१९२९), *'प्रेम निर्वाह'* (१९३५), *'पतिता की साधना'* (१९३६) उपन्यास प्रकाशित हुए। 'वाजपेयी जी' के लगभग सभी उपन्यासों में कथ्य का विषय प्रेम और काम भावना है। *'प्रेमपथ'* उपन्यास में एक विधवा स्त्री के अपने ही बहनोई के साथ प्रेम सम्बन्धों का अंकन किया है, जो सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ माना जाता है।

प्रेम के साथ-साथ 'वाजपेयी जी' ने अपने उपन्यासों में तात्कालिक समस्याओं का भी चित्रण किया है। मध्यवर्ग का परिवेश उनके लगभग सभी उपन्यासों में देखने को मिलता है। संयुक्त परिवार की आर्थिक और संस्कारगत स्थितियों के अंकन में 'वाजपेयी जी' ने व्यवस्था के प्रति विद्रोही भावना का वर्णन किया है। 'वाजपेयी जी' मध्यवर्गीय मानस की भावनाओं, इच्छाओं और विडम्बनाओं के उपन्यासकार है। उनके उपन्यास पात्रों के द्वारा व्यवस्थाओं के उत्तरदायित्वों के विरूद्ध होते हैं आक्रामकता की भावना का भी अंकन किया है। इनके उपन्यासों में भावना और कर्त्तव्य के मध्य होते हुए विद्रोह का भी वर्णन मिलता है। भावना और कर्त्तव्य की लडाई में अन्त में कर्त्तव्य की जीत होते दिखाया है। इन सबके साथ ही उपन्यासकार ने मध्यम वर्ग की सामाजिक व्यवस्था में विधवा, नयी दुल्हन, बिना विवाह की गई कन्या आदि के रूप में स्त्री की समस्याओं का चित्रण किया गया है। युवक-युवती के प्रेम सम्बन्ध में वे तात्कालीन व्यवस्था के बन्धनों को स्वीकार करते दिखाई पडते हैं। व्यवस्था की मर्यादा और स्वछन्द प्रेम के बीच में उपन्यासकार का विरोध हमेशा बना रहता है। आर्थिक व्यवस्था के क्षेत्र में लेखक के विचार का अध्ययन करे, तो प्रगतिशील विचारधारा का अंकन हुआ है।

'वाजपेयी जी' ने विवेच्यकाल में ही दूसरे उपन्यास *'अनाथ पत्नी'* में ब्रह्मण सामाज की व्यवस्था में फैल रहे उस दोष का चित्रण किया है, जिसमें विवाह होने के पश्चात् लडकी के जन्म या परिवार पर लगे किसी साधारण दाग या कलंक पर नाराज होकर दूल्हे पक्ष वाले दुल्हन का त्याग कर देते हैं और कुछ समय बाद ही अपने बेटे का दूसरा विवाह कर देते हैं। 'वाजपेयी जी' ने ऐसी स्थिति में आँसू बहाने की बजाय त्याग की हुई लडकी को अपने स्वावलम्बन के सहारे अपने भविष्य का निर्माण करते दिखाया गया है। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र रजनी अपने सामने उपस्थित स्थिति और विपक्ष हालातों से घबराती नहीं, बल्कि लगातार पढाई करते हुए मेडिकल कॉलेज से डॉक्टरी की परीक्षा पास करके अपना समस्त जीवन रोग-पीडितों की सेवा में लगा देती है। रजनी आर्थिक रूप से अपने पैरो पर खडी हो जाती हैं और फिर वह पुरूष वर्ग की गुलामी से असहाय स्त्रियों को मुक्त करवाती है। इसे एक नारी के सबलीकरण की विचारधारा की शुरूआत माना जा सकता है। इनके उपन्यासों में समाज और व्यवस्था के प्रति लेखक का आक्रोश एवं विद्रोह दिखाई पडता है।

इसी स्त्री समस्या को लेकर 'इलाचन्द्र जोशी जी' ने विवेच्यकाल में सिर्फ एक ही उपन्यास *'घृणामयी'* (१९२९) की रचना की। *'घृणामयी'* उपन्यास में एक ऐसी स्त्री के पश्चाताप की कहानी है, जो यौवन के पहले ही दौर मे, अपने पिता और भाई की उपेक्षा कर एक चरित्रहीन डॉक्टर युवक से प्यार करने लगती है। अपनी बहन के द्वारा दिए गए इस आघात को न सहन करने के कारण उसका भाई मौत को गले लगा लेता है और उसका पिता अपनी बेटी द्वारा दी गई शर्मीन्दगी को सहन नहीं कर पाता, इसी कारण उसके दिमाग की नस फट जाती है और उसी समय उसकी भी मौत हो जाती है। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र को अन्त में प्रेम विवाह पर पश्चाताप होता है। इससे यह पता चलता है, कि उपन्यासकार पश्चाताप की मनोस्थिति दिखाकर स्त्री सम्बन्धी अपने रूढिवादी दृष्टिकोण को दर्शाना चाहते हैं। उपन्याकार व्यक्ति के आन्तरिक जीवन मन में उत्पन्न होने वाले द्वन्द्व, मूल्यों को लेकर हो रहे संघर्ष को अपने उपन्यास का विषय बनाया है।

'इलाचन्द्र जोशी' के साथ ही विवेच्यकाल में 'जैनेन्द्र कुमार' ने भी बहुत प्रसिद्धी प्राप्त की है। 'जैनेन्द्र जी' विवेच्यकाल के सर्वाधिक उल्लेखनीय उपन्यासकार इसलिए है, कि उन्होंने अपनी दुर्लभ सर्जनात्मक प्रतिभा से मनौवैज्ञानिकता की और उन्मुख हिन्दी उपन्यास को सही दिशा और समृद्धि प्रदान की है। 'जैनेन्द्र' का प्रथम उपन्यास *'परख'* १९२० ई. में प्रकाशित

हुआ। *'परख'* का कहानी विषय प्रेम एक विशेष आदर्श का चित्रण है, जो अपने आप ही करूणा और प्रेम के वशीभूत होकर उससे विवाह करने की सोचने लगता है। उपन्यास की एक प्रमुख पात्र बाल विधवा कट्टों है। बाल विधवा कट्टो जिसका पति बचपन में ही स्वर्ग सिधार गया है तथा उस समय तो उसे विवाह के मायने भी पता नहीं थे। किन्तु जब वह बडी समझदार हुई तो अपने ही अध्यापक सत्यधन को प्रेम करने लगी। समाज को उसका यह प्रेम बिल्कुल भी पसन्द नहीं था, क्योंकि कट्टो एक विधवा है। अतः समाज व्यवस्था के अनुसार उसे प्रेम करने का कोई अधिकार नहीं है, ऐसी समाज की कट्टर मान्यता थी। सत्यधन भी कट्टो से प्रेम करने लगता है और उससे मन ही मन विवाह करने की ठान लेता है। पर सत्यधन का विवाह पहले से ही उसके मित्र बिहारी भी बहन गरिमा से तय हो चुका था। सत्यधन के मन में दोनों तरफ के रिश्तों को लेकर तीव्र द्वन्द्व होता रहता है। सत्यधन अगर कर्त्तव्य की नजर से देखता है, तो उसे गरिमा के साथ विवाह करने को बाध्य होना पडेगा और अगर कट्टो से विवाह करता है, तो समाज की व्यवस्था का उल्लघंन होता है। विधवा से विवाह करना तो व्यवस्था का सबसे बडा अपराध माना जाता था। समकालीन सामाजिक परिवेश में विवाह सम्बन्ध के बाहर युवक–युवती का प्रेम करना वर्जित था। किसी विधवा युवती और पुरूष का आपस में प्रेम पाप और व्यवस्था के खिलाफ अपराध की श्रेणी में आता था। समकालीन हिन्दी साहित्य में इसकी छाप सभी जगह दिखाई पडती है।

'परख' के पश्चात् 'जैनेन्द्र जी' का इस काल का दूसरा उपन्यास *'सुनीता'* सन् १९०५ ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में पहली बार एक स्त्री पात्र ने पाठक और आलोचक वर्ग को अपने साहस भरे कदम से आश्चर्यचकित कर दिया। उपन्यास की केन्द्रीय पात्र का नाम ही सुनीता है जो शादीशुदा और वैवाहिक जीवन के प्रति ईमानदार होते हुए भी अपना प्रेमी रखती है। सुनीता हरिप्रसन्न से प्रेम करती हुई भी वैवाहिक जीवन की मर्यादा को तोडनें में विश्वास नहीं करती। दाम्पत्य की सीमाओं के बाहर स्त्री के प्रेम के अधिकार की भी 'जैनेन्द्र जी' ने वकालत की है और *'सुनीता'* उपन्यास में इस प्रेम तथा इससे उत्पन्न का अनुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। उपन्यास के कथा संसार में एक मध्यवर्गीय परिवार के तीन–चार व्यक्तियों और एक क्रान्तिकारी पात्र तक ही सीमित है। इस प्रकार 'जैनेन्द्र जी' ने हिन्दी उपन्यास को बिल्कुल एक नयी दृष्टि दी, जिसका विकास बाद में हुआ। इनके उपन्यासों में स्त्री परम्परागत नियमों की व्यवस्था का विद्रोह हुआ है।

विवेच्यकाल में स्त्री लेखिकाओं ने भी उपन्यासों की रचना की है। यह काल हिन्दी उपन्यास में स्त्री लेखिकाओं के प्रवेश का भी शुरूआत काल था। जिनमें 'रूक्मिणी देवी' कृत *'मेम और साहब'*, 'कुन्ती' कृत *'सुन्दरी'*, 'विमला देवी चौधरानी' कृत *'कामिनी'*, 'रत्नवती देवी शर्मा' कृत *'सुमति'*, 'शैलकुमारी देवी' कृत *'उमा सुन्दरी'*, 'गिरिजा देवी' कृत *'कमला कुसुम'*, 'उषा देवी मित्रा' कृत *'वचन का मोल'* आदि उपन्यास सन् १९१९ ई. से लेकर १९३६ ई. तक के मध्य प्रकाशित किए गए है। इन समस्त उपन्यासों का प्रमुख विषय हिन्दू समाज में विधवाओं की दुखभरी और दयनीय स्थिति का अंकन करना है, क्योंकि इस समय महिलाओं के विधवा होने पर उन्हें बुरी नजर से देखा जाता था। समाजिक व्यवस्था ऐसी स्त्रियों को किसी प्रकार की खुली छूट नहीं देता था, बल्कि उसे चारों तरफ से बन्धनों में जकड दिया जाता था। इसी विषय को लेकर स्त्री लेखिकाओं ने उपन्यास रचना की। अगर कोई विधवा स्त्री किसी विवाहित पुरूष से प्रेम करती थी, तो समाज उसे संकटपूर्ण स्थिति में डाल देता था, उसे कदम-कदम पर संघर्षो से गुजरना पडता था। कई बार तो समाज उसे इतना मजबूर कर देता था, कि या तो वह आत्महत्या कर ले या फिर घर में ही कैद करके रख दी जाए। अगर कोई स्त्री शिक्षा प्राप्त की हुई है, तो उसे सामाजिक व्यवस्था द्वारा हेय दृष्टि से देखा जाता था। उसके चरित्र पर शक किया जाता था। धन के लालची परिवार में अगर कोई निर्धन परिवार की लडकी विवाह होकर आ जाती थी तो उसकी स्थिति बडी ही अपमानजनक कर दी जाती थी, तकरीबन ऐसे ही विषयों को लेकर उपन्यासों की रचना की गयी है। ये सभी उपन्यास लेखिकाएँ हिन्दू समाज में एक नारी की विकट और दयनीय स्थिति का प्रमाणिक अंकन करने में सफलता प्राप्त की है। वे परम्परागत नारी संहिता के विरोध में जाने का साहस नही कर सकीं है। यद्यपि स्त्री शिक्षा का वे खुलकर समर्थन करती हैं। अतः विवेच्यकाल की नारी उपन्यासकारों ने भी स्त्री की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए व्यवस्था पर अपना आक्रोश व्यक्त किया है।

'प्रसाद' के उपन्यास *'कंकाल'* १९३० ई. और *'तितली'* १९३४ ई. तथा अपूर्ण उपन्यास *'इरावती'* प्रकाशित हुआ। *'कंकाल'* उपन्यास में 'प्रसाद जी' ने एक ऐसी समस्या को अपना विषय बनाया, जो हिन्दू समाज की विकृतियों और अवैध सन्तानों के यथार्थ को उद्‌घाटित करती है। प्रयाग, काशी, हरिद्वार मथुरा, जैसे तीर्थस्थानों में धर्म के नाम पर पाखण्ड करने वालों की भरमार रहती है। मिथ्या आडम्बरों का ही वर्णन इस उपन्यास में किया गया है। नारी के प्रति पुरूष के परम्परावादी दृष्टिकोण पर भी 'जयशंकर प्रसाद जी' ने मार्मिक प्रहार किया है।

'कंकाल' उपन्यास की प्रमुख पात्र 'तारा और बंटी' समाज के उत्पीडन की शिकार है। वैसे अगर देखा जाए तो *'कंकाल'* उपन्यास की सभी स्त्रियाँ किसी-न-किसी रूप में पुरूष द्वारा छली जाती है और उन्हें धोखा देने वाले व्यक्ति समाज के भद्र व अच्छे कहे जाने वाले पुरूष ही है। 'प्रसाद जी' ने *'कंकाल'* उपन्यास में समाज के दलित, शोषित और पीडित वर्ग का चित्रण किया है। 'प्रसाद जी' ने *'तितली'* उपन्यास में सच्चाई की पीठ पर आदर्शो की स्थापना की है। किसानों, मजदूरों पर होनें वाले अत्याचारों, तहसीलदारों एवं महन्तों के हथकंडो, कलकत्ता महानगर के जुआरी व जेबकतरों के कारनामों तथा निम्न वर्ग की दयनीय स्थिति, विधवाओं की काम भावना आदि का 'तितली' उपन्यास में यथार्थ चित्रण मिलता है। 'प्रसाद जी' के उपन्यासों के पात्र आदर्श की स्थापना के लिए व अपने आत्म-सम्मान के लिए मर-मिटने को तैयार रहते हैं। इसके साथ ही स्त्री की दुखभरी करूण गाथा पर भी आक्रोश व्यक्त किया है।

'निरूपमा' (१९३६) उपन्यास में भी 'निराला जी' ने व्यवस्था के प्रति आक्रोश जाहिर किया है। इसमें अपने समय के आर्थिक रूप और वैचारिक रूप से पिछडें हुए रूढिगत संस्कारों में जकडें हुए ग्रामीण समाज का बडा ही दर्द भरा चित्र प्रस्तुत किया है। गाँव की स्त्रियों का स्वभाव व चरित्र को बडी ही सच्चाई के साथ अंकन किया गया है। *'निरूपमा'* के साथ ही 'निराला' ने *'प्रभावती'* (१९३६) नामक ऐतिहासिक रोमांस की रचना की। स्वयं 'निराला जी' ने इसे रोमांस भरे उपन्यास की संज्ञा दी थी। इसका कथ्य कान्यकुब्जेश्वर जयचन्द के सामन्तों से जुडी हुई है। वीरता और प्रेम, युद्ध और विवाह की कहानी तथा युद्ध और प्रेम से जुडें भावों की अभिव्यक्ति ही इसका प्रमुख लक्ष्य है। उन्होंने सामान्य जनता के दुख और शोषण, सामन्तों की विलासिता, बिना किसी कारण के ही युद्ध की उनकी मानसिकता राजनीतिक षड्यन्त्र, पुश्तैनी दुश्मनी के तहत लिए जाने वाले प्रतिशोध आदि का चित्रण किया गया है और इन्हीं सब बातों को 'निराला जी' भारत पर 'मुहम्मद गौरी' की जीत का कारण बताते हैं, जो ऐतिहासिक सच्चाई है। अत: इनके उपन्यासों में हमें राजनीति, समाज एवं व्यवस्था के प्रति विद्रोह स्पष्ट तौर पर देखने को मिलता है।

'उषा देवी मित्रा' कृत उपन्यास *'वचन का मोल'* सन् १९३६ ई. में प्रकाशित हुआ। अन्य महिला उपन्यासकारों की तुलना में इस दृष्टि से विशिष्ट है, कि इसमें प्रेम और विवाह की समस्या कुछ जटिल सन्दर्भो के साथ प्रस्तुत की गयी है। इस उपन्यास में प्रेम अपनी दृढता में 'प्राण जाईं पर वचन न जाईं' का उदाहरण पेश करता है। स्त्री की समस्याओं और उलझनों का

विश्वास करने योग्य तथा मनोवैज्ञानिक चित्रण भी इस उपन्यास में मिलता है। विवेच्यकाल में जो भी उपन्यास लिखे गए उसमें से कुछ तो पहले की परम्परा की आवृति है, जैसा की हर काल में देखने को मिलता है। इस काल के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते ऐय्यारी-तिलिस्म प्रधान कथा पुस्तकें इतिहास की वस्तु बन गयी। अपराध प्रधान और जासूसी कथा-पुस्तकें उपन्यास की सीमा से बाहर हो गयी। व्यवस्था के यथार्थ की दृष्टि से 'प्रेमचन्द' के समकालीन उपन्यासकारों में 'बेचन शर्मा उग्र', 'ऋषभचरण जैन' और 'जयशंकर प्रसाद' अपने प्राकृतिकवादी रूझान के कारण उल्लेखनीय है, यद्यपि वे सभी समकालीन आदर्शवादी प्रवृति की उपेक्षा नहीं कर पाते। 'उग्र' और 'प्रसाद' ने उपन्यास में चित्रित होने वाले यथार्थ का विस्तार किया और आज जिसे दलित कहाँ जाता है, उसका प्रवेश हिन्दी उपन्यास में कराया। इन उपन्यासकारों में 'सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' का महत्व इस दृष्टि से है, कि उनके उपन्यासों में सामाजिक परिवर्तन की इच्छा सबसे प्रखर रूप में प्रकट हुई है, फिर चाहे वेश्याओं का हो या किसानों का निराला जी क्रान्तिकारी बदलाव की नजर सब जगह दिखाई पडती है।

विवेच्यकाल के गौण उपन्यासों में भी व्यवस्था के प्रति आक्रोश देखने को मिलता है। नारी विषय को लेकर तो कोई समस्या ऐसी नहीं है, जो इन उपन्यासकारों ने छोंड दी हो। वैवाहिक समस्याओं में तिलक दहेज के नाम पर स्त्री पक्ष से लिए जाने वाले दहेज की समस्या को उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया है। दहेज के साथ-साथ, कुलीनता, कन्याओं को बेचना और वृद्धों का विवाह अर्थात् अनमेल विवाह, एक ही व्यक्ति के बहुत सारे विवाह, विधवा विवाह, प्रेम के पश्चात् का विवाह, एक ही जाति व अन्तर्जातीय विवाह, जारज सन्तान का प्रश्न आदि सभी समस्याओं का अंकन विवेच्यकाल के उपन्यासों में किया गया है। समाज में विधवाओं की दयनीय स्थिति का कारण आर्थिक परिस्थितियों में खोजने का प्रयास किया गया है, जो उनकी यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक है। इन उपन्यासकारों में से अधिकतर ने व्यवस्था पर आक्रोश को दिखाया है।

व्यवस्था के प्रति आक्रोश से ओत प्रोत ही 'प्रताप नारायण श्रीवास्तव' का प्रथम उपन्यास *'विदा'* १९२८ ई. में ही प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् उनका *'विजय'* १९३७ ई. और *'विकास'* (१९३८) उपन्यास प्रकाशित हुआ। *'विजय'* उपन्यास में कम उम्र के छोटे-छोटे बच्चों के विवाह किए जाने की समस्या को प्रमुख विषय बनाया गया है। इस बाल विवाह से उत्पन्न दुखद स्थितियों का चित्रण किया गया है। इसमें विधवाओं के प्रति लेखक की सहानुभूति और

उन्हें दुखीत करने वाले समाज के प्रति आक्रोश के बावजूद उपन्यासकार भारतीय स्त्री के आदर्श का ही चित्रण करता है। उपन्यासकार 'प्रताप नारायण' उच्च वर्ग के युवक-युवतीयों के सम्बन्धों के चित्रण में विशेष रूचि रखते हैं। उच्चवर्ग के आचार-विचार और रहन-सहन के अंकन में उपन्यासकार को अच्छी सफलता मिली है। इनके उपन्यासों में अधिकतर उच्चवर्ग के जीवन जीने के तरीके, उनकी रंगीनियों और विलासिता तथा व्यवस्था के प्रति विद्रोह देखने को मिलता है।

'देवनारायण द्विवेदी' जी ने भी विवेच्यकाल में अपने उपन्यासों की रचना की, जिसमें प्रथम *'कर्त्तव्याघात'* १९२५ ई. और दूसरा उपन्यास *'प्रणय'* १९२९ ई. प्रकाशित हुए। इनके प्रथम उपन्यास *'कर्त्तव्याघात'* में बिना बेमेल विवाह होने के पश्चात् होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन किया है। किसी निर्धन परिवार की बेटी का अगर किसी लालची परिवार में विवाह कर दिया जाए, तो उसकी बेटी को कितना अपमानित, लांछित व दुखी होना पडता था इसी विषय पर उपन्यासकार ने ध्यान केन्द्रित किया है। स्त्री के आचरण को लेकर बातें बनाने वाले गाँव वालों के अन्धविश्वास को भी दिखलाया है। दूसरे उपन्यास प्रणय में प्रेम के अकर्षण, पातिव्रत के साथ स्त्री का अपना-अपना स्वाभिमान, कष्ट व दुख सहन करते हुए भी समाज-सुधार में लगे रहने आदि के अंकन को लेखक ने प्रमुखता दी है। सन् १९३८ ई. में भी 'द्विवेदी जी' के दो और उपन्यास प्रकाशित हुए जिनका नाम *'दहेज'* और *'पश्चाताप'* है। *'दहेज'* उपन्यास का प्रमुख विषय जैसे की नाम से ही स्पष्ट है, कि हिन्दू समाज में फैल रही दहेज प्रथा और इस प्रथा से पैदा हो रही समाज व्यवस्था की बुराईयों का अंकन किया गया है। धनवान व्यक्ति तो अपनी बेटी का विवाह मुँह माँगा धन देकर कर देता है किन्तु, गरीब व्यक्ति इन सब में धंस कर रह जाता है। धन के लालची वर पक्ष वाले उनसे दहेज की मांग करते हैं, जो अगर वह नहीं दे पाए तो उनकी पुत्री को जीवन भर यातनाओं से गुजरना पडता है। अत: दहेज के कारण उत्पन्न नारी का दर्द ही इन उपन्यासों में चित्रित किया गया है। अत: 'द्विवेदी जी' के उपन्यासों में नारी विषयक चित्रण की बहुलता है तथा सामाजिक व्यवस्था के प्रति रोष भी दिखाई देता है।

अत: अन्त में हम कह सकते हैं, कि विवेच्यकाल के उपन्यासों में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं व्यवस्था सभी के प्रति आक्रोश स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। इस समय के उपन्यासकारों ने एक ही समस्या को अधिक प्रमुखता दी है और वो है, नारी की समस्या को

अंकित करना। इस काल में स्त्री की विभिन्न मन: स्थितियों को उपन्यासों में व्यक्त किया गया है। विद्रोह एवं आक्रोश विवेच्यकाल में प्रत्येक उपन्यास में लगभग देखने को मिल जाता है।